प्रवचन-१६, श्लोक-१७, गाथा-१०, १२, मंगलवार, फाल्गुन कृष्ण ५, दिनांक १६-०३-१९७१

यह नियमसार, जीव अधिकार चलता है। १०वीं गाथा। अन्त में आया, अन्त में, देखो! है पीछे। ज्ञान के प्रकार की बात चलती है। आत्मा ज्ञानस्वभाव है, उसमें स्वभावज्ञान.. है अन्दर देखो! आत्मा में ज्ञान है और ज्ञान के दो प्रकार हैं। एक स्वभावज्ञान और एक विभावज्ञान। विभावज्ञान की व्याख्या जरा आ गयी थोड़ी। उसमें स्वभावज्ञान के दो प्रकार हैं। वह स्वभावज्ञान अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है। वह भी कार्य और कारणरूप दो प्रकार का है, अर्थात् स्वभावज्ञान के भी दो प्रकार हैं—कार्यस्वभावज्ञान और कारणस्वभावज्ञान। कार्य तो सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है। क्या कहते हैं, देखो! आत्मा में त्रिकाली ज्ञान गुणस्वभाव है, उसे तो यहाँ कारणस्वभावज्ञान कहा है, और उसमें से प्रगट होती केवलज्ञानपर्याय, उसे कार्यस्वभावज्ञान कहते हैं।

वह कार्यस्वभावज्ञान केवलज्ञान आत्मा में हो, वह अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है। केवलज्ञान जो आत्मा में होता है। किस प्रकार होता है, वह पाठ में है। अभी टीका में आयेगा। कार्यस्वभावज्ञान, ज्ञान की पर्याय में पूर्णता प्रगट हो तो (उस) कार्यस्वभावज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं। वह केवलज्ञान अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है। कार्य तो सकल विमल केवलज्ञान है। एक समय की पर्याय, सर्वज्ञ की पर्याय-केवलज्ञान, वह तो सकल विमल-सर्वथा निर्मल केवलज्ञान (है)। उसे कार्यस्वभाव (ज्ञान) कहा जाता है। वह कार्य किस प्रकार होता है? केवलज्ञान की पर्याय आत्मा में होती है तो वह किस प्रकार होती है, वह कहते हैं। केवलज्ञान है, उसका कारण परमपारिणामिकभाव में स्थित..। देखो न!

अन्तिम लाईन है न यह? **चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है - गहरा उतर जाता है,...** २६ पृष्ठ पर है। सूक्ष्म बात है, भाई! जैनदर्शन का वास्तविक तत्त्व क्या है, उसमें अभी गड़बड़ हो गयी। आहा..हा..! सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ, जिन्हें एक समय में त्रिकाल ज्ञान हुआ। तो कहते हैं कि उन्हें त्रिकाल ज्ञान कैसे हुआ? और जिन्हें केवलज्ञान होता है, उन्हें केवलज्ञान किससे होता है? भगवान आत्मा में ज्ञानस्वभाव, अतीन्द्रिय अव्याबाध, अमूर्त, अविनाशी - ऐसा जो स्वभाव है, उसमें अन्तर्मुख होकर

प्रवेश करके, अन्दर गहरा उतरकर, केवलज्ञान की कारणरूप शक्तिरूप ज्ञान है, उस ज्ञान के पाताल को पकड़ने से... सेठी! आहा..हा..! केवलज्ञान होता है। इसका अर्थ कि कोई देह की क्रिया, पंच महाव्रत की क्रिया, वह तो राग है, उससे भी केवलज्ञान नहीं होता; और पूर्व में चार ज्ञान की, मति (ज्ञान) की पर्याय हो या बारह अंग का श्रुतज्ञान (हो), समझ में आया? पर्याय में केवलज्ञान होने से पहले चौदह पूर्व के ज्ञान की पर्याय (हो), मति (ज्ञान) में जातिस्मरण इत्यादि अनेक हजारों भवों का ज्ञान आदि उसकी शक्तिप्रमाण हो, उस ज्ञान से भी केवलज्ञान नहीं होता। देखो! अभी भारी गड़बड़ (चलती है)। यह करे तो केवल (ज्ञान) होगा, यह करे तो मोक्ष होगा। क्या मोक्ष होगा? मोक्ष किसे कहते हैं? इसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया? पोपटभाई!

यह शास्त्र का पठन और बाहर का उघाड़ हो तो उसके कारण से केवलज्ञान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन-क्षायिक समकितपूर्वक चार ज्ञान की पर्याय हो तो भी क्षायिक समकित की पर्याय जो समकित है, उससे भी केवलज्ञान नहीं होता। आहा..हा..! केवलज्ञान का कारण परमपारिणामिकभाव से स्थित.. अहो! आत्मा और उसमें ज्ञानस्वभाव, मूलस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, अविनाशी स्वभाव है। उसमें एकाग्र होने से, उस गुण में एकाग्र होने से केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया? एकरूप ज्ञानस्वभाव, ज्ञायकभाव वहाँ कहा। यहाँ ज्ञानस्वभाव गुण कहा है। पर्याय (का) वर्णन करना है न अकेला। आहा..हा..!

मुमुक्षु : यह इकाई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इकाई।

भगवान आत्मा सत्ता-अस्तित्व है न? अविनाशी अस्तित्व है, तो उसमें ज्ञानगुण है। ऐसे अनन्त गुण अविनाशी हैं, परन्तु अभी तो केवलज्ञान की पर्याय का कारण बताना है। अन्दर में दूसरे श्रद्धागुण, चारित्रगुण, आनन्दगुण हैं, वह भी केवलज्ञान की पर्याय का कारण नहीं। समझ में आया? आत्मा में केवलज्ञान-उत्पत्ति का कारण, कहते हैं कि देह की क्रिया तो नहीं, (क्योंकि) वह तो जड़ की है। अन्दर में पाँच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह राग है; उससे भी केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती और केवलज्ञान उत्पन्न होने से पूर्व राग के पीछे अन्दर चार ज्ञान की पर्याय हो, तो भी उन चार ज्ञान की पर्याय से भी केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता और अन्तर में श्रद्धा, शान्ति, आनन्द इत्यादि अनन्त गुण

हैं, उन गुणों के कारण भी केवलज्ञान नहीं होता। यह 'आतम भावना भावतां...' श्रीमद् में आता है न? 'आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे', परन्तु आत्मा क्या, भावना क्या और केवल (ज्ञान) क्या? कुछ खबर नहीं। क्यों, प्रेमचन्दभाई! किया था न, कितनी बार? बहुत किया था।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा अर्थात् अनन्त-अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि शक्ति का पिण्ड। अब उसकी भावना; यहाँ केवलज्ञान की बात लेना है। तो भावना का अर्थ ज्ञानगुण जो त्रिकाल है, उसमें एकाग्र होना, वह भावना है। उसमें 'आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे..' श्रीमद् में आता है। ऐई! चेतनजी! इसे बहुत रटाया होगा तब। श्रीमद् में इसने दीक्षा ली थी।

मुमुक्षु : जाप करावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाप करना, वह तो विकल्प है। आहा..हा..! भाई! मार्ग कोई (अलग है)। अनन्त काल से इसने यथार्थरूप से यह बात सुनी नहीं। बाहर की प्रवृत्ति ऐसा करना, वैसा करना, जाओ, वह धर्म है और मोक्ष होगा। धूल में भी मोक्ष नहीं होगा, अच्छा पुण्य भी नहीं बँधेगा। समझ में आया? आहा..हा..! अच्छा पुण्य नहीं बँधेगा, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : आतम भावना भावतां।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उस ज्ञानानन्दस्वभाव आत्मा में ज्ञान। परम स्वभावभाव आत्मा में ज्ञान ध्रुव पड़ा है, उस ज्ञान की भावना, ज्ञान में अन्तर्मुख एकाग्र होना। अन्तर में प्रवेश करना, अन्दर गहरा उतर जाना। वह इस कलश में आयेगा। समझ में आया? कितना स्पष्ट किया है?

मुमुक्षु : जाप में भी बाह्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाप तो कहीं रह गया विकल्प। वह तो राग है। परन्तु जाप करने के पश्चात् कदाचित् सम्यग्दर्शन-ज्ञान उत्पन्न हुआ, तो वह पर्याय भी केवलज्ञान का कारण नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? इतने थोड़े शब्दों में (कितना भरा है)! पद्मप्रभमलधारिदेव जंगलवासी दिगम्बर मुनि थे। आत्मध्यान (में लीन थे)। आनन्दकन्द प्रभु, सच्चिदानन्द आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसमें ज्ञानस्वभाव त्रिकाली अव्याबाध पड़ा है। अतीन्द्रिय

अव्याबाध है। उसमें अन्तर्मुख होने से, उसे कारण बनाकर, अन्तर में से कार्य-केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। समझ में आया? क्योंकि केवलज्ञान की पर्याय, ऐसी अनन्त (पर्यायें) ज्ञानगुण स्वभावभाव में शक्तिरूप पड़ी है। समझ में आया? देखो! यहाँ तो समकित के कारण या अन्दर श्रद्धागुण त्रिकाली है, उसके कारण से भी केवलज्ञान नहीं। समझ में आया? एक गुण का कार्य दूसरे गुण से नहीं होता। गजब बात है! ओहो..हो..! सन्तों की बात! आहा..हा..! अन्दर स्थिर हो जाये, स्थिर। स्थिर हो जा, बापू! अन्दर में जा। आहा..हा..!

मुमुक्षु : एक गुण का कार्य दूसरे गुण से नहीं होता तो एक द्रव्य का कार्य दूसरे द्रव्य से किस प्रकार हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान से तो होता है या नहीं? देव-गुरु का भजन करे। देव-गुरु... देव-गुरु... देव-गुरु... शुद्ध हैं वे। शुद्ध हैं, इसलिए उनसे होता है या नहीं? शिवलालभाई नहीं। वे गये। उनके पिता कहते थे, (संवत्) २०१० के वर्ष में। देव-गुरु-शास्त्र जो शुद्ध हैं, तो शुद्ध के कारण होता है, शुद्ध के कारण शुद्धता होती है। वे कहाँ अशुद्ध हैं? अरे! वे शुद्ध हैं परन्तु उनका आश्रय करने जायें, वहाँ अशुद्धता उत्पन्न होती है। देव-शास्त्र-गुरु पर हैं, उनका आश्रय अवलम्बन करने जाये तो विकल्प / राग उठता है। समझ में आया? उनसे कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता। यहाँ तो केवलज्ञान की बात है, परन्तु सम्यग्दर्शन की पर्याय, वास्तव में अन्दर श्रद्धागुण जो परमपारिणामिकस्वभाव में पड़ा है, परमपारिणामिकस्वभावभाव ध्रुव में श्रद्धागुण शक्तिरूप त्रिकाल है। उसके कारण से वास्तव में श्रद्धागुण की पर्याय उत्पन्न होती है। आहा..हा..! कहो, समझ में आया? समझाय छे कांई? हमारी गुजराती थोड़ी आवे न यह तो। बाद में आये। पहले देखा था। नहीं दिखे तो सबेरे गुजराती में चलाया। बाद में आये थे। समझ में आया? आहा! अरे! वास्तविक भगवान तीर्थंकर ने क्या मार्ग कहा है, (उसकी) खबर नहीं; बाहर की प्रवृत्ति ऐसे करो, वैसे करो। कर-करके मर गया।

यहाँ तो कहते हैं कि एक गुण की पर्याय दूसरे गुण के कारण नहीं होती, भाई! आहा..हा..! देखो न! पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका बनायी है न! अब (कुछ लोगों को) यह टीका मान्य नहीं। कहो, अरे!

मुमुक्षु : गाथा स्पष्ट थी, यह मैला कर डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट कर डाला। कितना स्पष्ट किया है! आहा..हा..! यथार्थ-यथार्थ वस्तु।

भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव से तो शक्तिरूप से कारणज्ञानरूप तो त्रिकाल अन्दर में पड़ा है। आहा..हा..! ध्रुव, वह ध्रुव ज्ञान जो त्रिकाली अविनाशी है, उसका अन्तर आश्रय करना, उसमें एकाग्र होना; अन्दर में जो गुण है, वहाँ वर्तमान पर्याय को ले जाना। आहा..हा..! गहरे उतर जाना, गहरे। सागर में-समुद्र में नीचे जैसे मोती हो तो गहरे उतरे तो मोती हाथ में आते हैं। समझ में आया? समुद्र में ऊपर-ऊपर जाये तो मिले? अन्दर मोती हों, वे ऊपर से मिलें? इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान समुद्र अन्दर है... आहा..हा..! उस ज्ञानस्वभावरूपी निज स्वभावरूप ज्ञानसमुद्र में प्रवेश करे। पर्याय में नहीं, राग में नहीं; गुण में प्रवेश करे, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! प्रवेश का अर्थ? उसमें एकाग्र होना। देखो, यह पद्धति। केवलज्ञान अथवा मोक्ष पाने की पद्धति। कितनों ने तो जिन्दगी में सुना भी नहीं होगा। कहे मोक्ष होता है... मोक्ष होता है.. धर्म करें तो। परन्तु धर्म क्या? मोक्ष क्या? तुझे खबर ही नहीं।

मुमुक्षु : कर्म का क्षय हो तब होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म तो उसके घर में रहे। कर्म का क्षय हो तो केवलज्ञान हो, यह बात यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो क्षायिक समकित हुआ है तो उससे केवलज्ञान होता है, यह भी नहीं है। यहाँ तो चार ज्ञान की सम्यक् पर्याय उत्पन्न हो तो उससे केवलज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है और अन्तर आत्मा में अनन्त आनन्द पड़ा है तो आनन्द के आश्रय से केवलज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? देखो! टीका, देखो! यह शास्त्र। वर्तमान में तो सब धूल धमाका.. ऐसा करूँ, वैसा करूँ, सुधार करूँ... किसका सुधार? तत्त्व में सुधार हुए बिना सुधार कहना किसे? समझ में आया? जिसे कल्याण करना है तो बात है। समझ में आया? बाहर में दिखाव करना हो कि हम धर्म करते हैं। ऐसा है, वैसा है, हो, दुनिया में बाहर प्रसिद्ध हो अर्थात् संसार में पड़ो। आहा..हा..! समझ में आया?

कहते हैं **कार्य तो सकल विमल...** बस, कार्य में इतना शब्द प्रयोग किया है। **केवलज्ञान है और उसका कारण, परम-पारिणामिकभाव से स्थित, त्रिकाल निरुपाधिक...** केवलज्ञान तो नया उत्पन्न होता है। यह ज्ञान तो त्रिकाल निरुपाधि अन्दर है। उपाधि तो कुछ

है ही नहीं। कर्म के अभाव की अपेक्षा भी नहीं। कर्म के निमित्त की तो नहीं, परन्तु कर्म के अभाव की अपेक्षा भी नहीं। वह तो त्रिकाल निरुपाधिक तत्त्व है। कहो, यह सेठी जयपुर के रहनेवाले हैं। जयपुर तो जैन का बड़ा गाँव कहलाता है। जैनपुरी, लो! आहा..हा..! भाई! तेरा वास्तविक स्वभाव क्या है, वह कभी सुना ही नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : यह बात पूरे हिन्दुस्तान में नहीं तो जयपुर में कहाँ से आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में तो है। सब आत्मा में है। आहा.हा..!

केवलज्ञान का कारण, एक-एक गुण की पर्याय का कारण, केवलज्ञान पर्याय है न? केवलज्ञान कार्य कहो, केवलज्ञान पर्याय कहो, या दशा कहो, या अवस्था कहो, वह स्वाभाविक केवलज्ञान की पर्याय सकल विमल है और उस कार्य का कारण त्रिकाल निरुपाधि ज्ञानगुण ध्रुव है। आहा..हा..! समझ में आया? यहाँ तो अभी विवाद उठाना है, भाई! इस व्यवहार से होता है, ऐसा व्यवहार करो तो निश्चय होता है (ऐसा विवाद करना है)। अब इतना विवाद। अरे, भगवान! सुन तो सही भाई! यहाँ तो (कहते हैं), व्यवहार से तो नहीं, परन्तु निश्चय से भी जो अपने स्वभाव के आश्रय से मोक्षमार्ग की पर्याय उत्पन्न हुई, उससे भी केवलज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, रतिभाई! तुम्हारे श्वेताम्बर में था कुछ? तुम स्थानकवासी थे न? यह स्थानकवासी, तुम मन्दिरमार्गी। तुम्हारी तो खबर है न। यह चुनीभाई स्थानकवासी है। आहा..हा..! वासी में वासी रह गया।

भगवान आत्मा... आहा..! कैसी बात की है! गजब बात की है! ओहो..हो..! तीर्थंकर का पेट (अभिप्राय) खोलकर रखा है, भाई! तुझे केवलज्ञान चाहिए, केवलज्ञान की अविनाशी कार्यदशा हो, कायम रहे, ऐसा लिया न यहाँ तो? है तो एक समय की पर्याय, परन्तु वह उत्पन्न हुआ तो ऐसा का ऐसा केवलज्ञान सादि-अनन्त रहेगा। उस केवलज्ञान का कारण अन्दर ज्ञान-गुण स्वभाव है, उसे दृष्टि में लेकर, ज्ञान की पर्याय में उसे ज्ञान में ध्येय बनाकर, एकाग्र होने से केवलज्ञान होगा, भाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में है। बाहर से कहाँ से आयेगा? अन्दर में भी एक-एक गुण की पर्याय उस गुण के कारण से आयेगी, ऐसा कहते हैं। कितनी स्वतन्त्रता और स्पष्टता।

केवल विभावरूप ज्ञान, तीन हैं... लो, स्वभावज्ञान के दो भाग आ गये। **केवल विभावरूप ज्ञान, तीन हैं—कुमति, कुश्रुत, और विभङ्ग।** वह भी मति, श्रुत और विभंग अज्ञान, वह भी अपने चैतन्य को अनुसरकर होते हैं। ऐसा सिद्ध करना है न? कर्म का नाश होकर हुए हैं, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

इस उपयोग के भेदरूप ज्ञान के भेद, अब कहे जानेवाले दो सूत्रों द्वारा (११ और १२वीं गाथा द्वारा) जानना। आगे कहेंगे...

भावार्थ :— भावार्थ है न यह? **चैतन्यानुविधायी परिणाम, वह उपयोग है।** कल आया था। परन्तु कल गुजराती में आया था, भाई! आज वापस हिन्दी में आ गया। आहा..हा..! भगवान तेरा मार्ग कुछ अलग है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के मुख से निकली हुई बात आगम में... ऐसा कहा न, आगम में ऐसा कहा है, ऐसा आया था न? आगम में ऐसे तत्त्व कहे हैं। क्या कहा? सर्वज्ञ भगवान, उनकी वाणी, उसमें छह द्रव्य कहे। यह बात चलती है। उसमें भी आत्मद्रव्य में केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हो? आगम में क्या कहा है? शास्त्र में क्या कहा है? यह बात चलती है।

भगवान के आगम में ऐसा कहा कि केवलज्ञान का कार्य जब उत्पन्न होता है, वह अन्तर ज्ञानगुण के कारण से उत्पन्न होता है - ऐसा आगम में कहा है। भगवान ने ऐसा कहा तो वाणी में ऐसा आया। आहा..हा..! समझ में आया? यह वाणी देखो! परमागम शास्त्र। यह श्वेताम्बर की वाणी में यह बात है ही नहीं। यह तो एक समझने के लिये (बात है), हों! किसी के साथ विरोध की बात नहीं है। वह भी आत्मा है। किसी के प्रति विरोध करना, द्वेष करना, यह बात नहीं है। सब आत्मा हैं, परन्तु वस्तु का स्वरूप यह है। समझ में आया? आहा..हा..!

यहाँ तो क्या आया अभी? कि भगवान की वाणी परमागम और परमागम में ऐसा कहा है। उनके (श्वेताम्बर के) ३२-४५ सूत्र हैं तो उनमें यह बात है ही नहीं, हमने तो सब देखें हैं न। समझ में आया? ४५-३२ में करोड़ों श्लोक। टीका में कहीं थोड़ा लेकर डाला हो, परन्तु वस्तु में नहीं है। आहा..हा..! परन्तु तुमने कितने वर्ष वहाँ मुंडाया है। कितने वर्ष हुए?

मुमुक्षु : पचपन वर्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : पचपन वर्ष। श्वेताम्बर में बहुत क्रियाकाण्ड करते-करते... **चैतन्यानुविधायी परिणाम, वह उपयोग है।** यह व्याख्या। भगवान आत्मा का चैतन्यगुण, उसे अनुसरकर दशा हो, उसे उपयोग कहते हैं। चैतन्य एक आत्मा का चैतन्यगुण। आत्मा द्रव्य-वस्तु, उसका चैतन्यगुण। उसे अनुसरण करके परिणाम, जो अवस्था हो, उसे उपयोग कहते हैं। वह **उपयोग, दो प्रकार का है—(१) ज्ञानोपयोग, और (२) दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग के भी दो प्रकार हैं—(१) स्वभावज्ञानोपयोग, और (२) विभावज्ञानोपयोग। स्वभावज्ञानोपयोग भी दो प्रकार का है—(१) कार्यस्वभाव -ज्ञानोपयोग (अर्थात्, केवलज्ञानोपयोग),** अभी कहा वह। **और (२) कारणस्वभाव -ज्ञानोपयोग (अर्थात्, सहजज्ञानोपयोग)।**

नीचे नोट। ***सहजज्ञानोपयोग, परमपारिणामिकभाव से स्थित है...*** अभी आ गया है वह। आहा..हा..! वस्तु-वस्तु भगवान आत्मा में ज्ञानगुण, चैतन्य का नूर-पूर अन्दर पड़ा है। आहा..हा..! वह ***परमपारिणामिकभाव से स्थित है तथा त्रिकाल उपाधिरहित है,...*** आत्मा का ज्ञानस्वभाव त्रिकाली निरुपाधि (उपाधि) रहित है। ***उसमें से (सर्व को जाननेवाला) केवलज्ञानोपयोग प्रगट होता है।*** उसमें से केवलज्ञान की दशा प्रगट होती है। ***इसलिए सहजज्ञानोपयोग, कारण है और केवलज्ञानोपयोग, कार्य है।*** है नीचे? भगवान आत्मा में सहजज्ञानोपयोग त्रिकाल। त्रिकाल ज्ञानोपयोग जो पड़ा है, वह कारण है और केवलज्ञानोपयोग, कार्य है। आहा..हा..! ऐसा कारण और कार्य, देखो तो सही! कारण-कार्य जाना, वह सब जाना। यह चिद्विलास में आता है न? भाई! जैनदर्शन का यथार्थ कारण-कार्य जाने तो सब जाने। आहा..हा..! कारण-कार्य यह।

ऐसा होने से सहजज्ञानोपयोग को कारणस्वभावज्ञानोपयोग कहा जाता है और केवलज्ञानोपयोग को कार्यस्वभावज्ञानोपयोग कहा जाता है। लो! ऐसी व्याख्या! यह कन्दमूल नहीं खाना, यह व्रत पालना, यह सम्मेदशिखर की यात्रा करना, इसमें तो ठीक पड़ता है, भाई! उसमें तो राग की मन्दता हो तो पुण्य है; धर्म-वर्म है नहीं। जिसको शान्ति से आत्मा का जो वास्तविक तत्त्व है, उसकी समझ करनी हो तो यह है। बाकी तो सर्वत्र हो.. हा.. हो..हा.. चलता है, चलो, संसार अनादि का है तो चलता है। अन्दर सहज ज्ञान हो गया न?

अब **विभावज्ञानोपयोग भी दो प्रकार का है...** यह आगे आयेगा। **(१) सम्यक् विभावज्ञानोपयोग, और (४) मिथ्या विभावज्ञानोपयोग (अर्थात्, केवल विभाव - ज्ञानोपयोग)। सम्यक् विभावज्ञानोपयोग के चार भेद (सुमतिज्ञानोपयोग, सुश्रुतज्ञानोपयोग, सुअवधिज्ञानोपयोग, और मनःपर्ययज्ञानोपयोग)...** यह विभाव कहने में आता है। है सम्यग्ज्ञान परन्तु अभी अपूर्ण है, इस अपेक्षा से इसे विभाव कहा जाता है। वास्तविक पूर्णता नहीं, इसलिए विभाव कहने में आता है। समझ में आया? जैसे इन्द्रिय पूर्ण नहीं हो तो विकलेन्द्रिय कहते हैं न? वैसे ज्ञान पूर्ण नहीं तो उसे विभावज्ञान कहा है। आहा..हा..!

अब अगली दो गाथाओं में कहेंगे। मिथ्या विभावज्ञानोपयोग के, अर्थात् केवल विभावज्ञानोपयोग के तीन भेद हैं — (१) कुमति-ज्ञानोपयोग, (४) कुश्रुतज्ञानोपयोग, और (३) विभङ्गज्ञानोपयोग अर्थात् कुअवधिज्ञानोपयोग]।

श्लोक-१७

[अब, दसवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं]

(मालिनी)

अथ सकल-जिनोक्त-ज्ञानभेदं प्रबुद्ध्वा,
परिहृतपरभावः स्वस्वरूपे स्थितो यः।
सपदि विशति यत्तच्चिच्चमत्कारमात्रं,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ।।१७।।

(वीरछन्द)

जो नर जिनवर कथित ज्ञान के सकल भेद को लेता जान।
निजस्वरूप में थिर रहकर वह परभावों को तजे सुजान॥
निज चैतन्य चमत्कारमय भावमात्र में होता लीन।
परमश्रीरूपी कामिनी को त्वरित वरे यह पुरुष प्रवीण॥१७॥

श्लोकार्थ :- **जिनेन्द्रकथित समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर, जो पुरुष परभावों का परिहार करके, निजस्वरूप में रहते हुए, शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है - गहरा उतर जाता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है (अर्थात्, मुक्तिसुन्दरी का पति होता है।)॥१७॥**

श्लोक-१७ पर प्रवचन

अब, दसवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं-

विशति का अर्थ किया, नहीं ? **विशति** ऐसा शब्द होगा। विशत। १७वाँ कलश। पृष्ठ २६। हमें हिन्दी नहीं आती है, थोड़ी-थोड़ी (आती है)। हमारे (गुजराती में) सत्तर कहते हैं, एक और सात को सत्तर कहते हैं। तथा सात और शून्य को सीतेर कहते हैं।

अथ सकल-जिनोक्त-ज्ञानभेदं प्रबुद्ध्वा,
परिहृतपरभावः स्वस्वरूपे स्थितो यः।
सपदि विशति यत्तच्चिच्चमत्कारमात्रं,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ।।१७।।

दो शब्द कठोर-भारी। **सपदि विशति** शीघ्ररूप से अन्दर प्रवेश कर। आहा..हा..! शीघ्रता से। श्रीमद् में आया है न यह ? शीघ्रता से होओ, शीघ्रता से तजो, वैसे इस **सपदि** का अर्थ शीघ्रता से है और विशति का अर्थ अन्दर प्रवेश कर। नीचे इसका अर्थ।

श्लोकार्थ :- जिनेन्द्रकथित... जिनेन्द्रकथित-वीतराग परमेश्वर ने कहा हुआ। आया न ? जिनेन्द्र और आगम कहा था न ? आगम में ऐसा कहा, तो **जिनेन्द्रकथित...** वीतराग परमेश्वर पूर्ण परमात्मा, जिनकी दशा पूर्ण वीतराग हो गयी है। अन्तर स्वभाव में एकाकार होकर वीतरागस्वभाव है, चारित्रस्वभाव है, उसका आश्रय करने से भगवान को वीतरागभाव उत्पन्न हुआ है। ऐसा **जिनेन्द्रकथित समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर,...** समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर करना क्या ?

जो पुरुष परभावों का परिहार करके,... विकल्पादि परभाव का लक्ष्य छोड़कर। **निजस्वरूप में रहते हुए,...** अपना ज्ञानस्वभाव भगवान, निजस्वभाव में स्थित रहता हुआ

अन्दर रहता हुआ। राग को छोड़कर और एक समय की पर्याय की ओर का भी लक्ष्य छोड़कर। **निजस्वरूप में रहते हुए,...** अपने शाश्वत् ध्रुवस्वरूप में रहता हुआ। **शीघ्र...** यह **सपदि** का अर्थ है। **सपदि** अर्थात् शीघ्र। और फिर **विशति चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है...** है न? **विशति यत्तच्चिच्चमत्कारमात्रं ,** यह चैतन्य चमत्कार सृष्टि के ख्याल में नहीं है। अन्तर में भगवान चैतन्य चमत्कार ऐसा अपना निज स्वभाव, उसमें शीघ्ररूप से जो आत्मा अन्तर में **गहरा उतर जाता है,...** प्रवेश करता है, उसे केवलज्ञान हो जाता है। आहा..हा..! लो, पोपटभाई!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान की शुरुआत में धर्म की पहली दशा अन्तर्मुख होकर होती है परन्तु यहाँ तो पूर्व की बात करनी है न? सम्यग्दर्शन जो धर्म की पहली सीढ़ी, उस सम्यग्दर्शन का भी कारण वह आत्मद्रव्य है। त्रिकाली ध्रुव पूरा द्रव्य लो तो। नहीं तो अन्दर श्रद्धा-गुण है, त्रिकाली श्रद्धा-गुण परमपारिणामिकस्वभाव में स्थित है। ऐसे द्रव्यस्वभाव का अन्तर्मुख आश्रय करके सम्यग्दर्शन होता है। कहो, समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। देव-गुरु शास्त्र की भक्ति का विकल्प उठे, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता, वैसे एक समय की व्यक्त पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। यहाँ की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन त्रिकाल श्रद्धागुण जो परमस्वभाव में पड़ा है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। शान्तिभाई! गजब, भाई! यहाँ तो नव तत्त्व की श्रद्धा करो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, वह सम्यग्दर्शन। हैरान.. हैरान कर डाला है।

मुमुक्षु : करते-करते आगे बढ़ा जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर पीते-पीते अमृत की डकार आयेगी, ऐसा कभी होता नहीं। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आती है? राग जहर है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन छोड़े? छोड़े कौन और रखे कौन? समझ में आया? ज्ञानी को भी आता है। आता है तो आओ, जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। उसके कारण से होता है। भारी कठिन। तुम्हारे गाँव के कोई कबीर का था। भूराभाई के साथ कोई आया था। कबीर का कोई किसान (था)। बड़ी अध्यात्म की बातें बोलता था। बहुत वर्ष पहले की बात है। बाजार में कमरा है, वहाँ उतरे थे। वहाँ बाजार में बड़ा कमरा है न वहाँ, फिर रात्रि

में भूराभाई और .... कल्पवेदिक नाम की कोई बड़ी सज्झाय है उनकी। वस्तु में कुछ नहीं परन्तु ऐसे आध्यात्मिक बात करे। किसान था। भूराभाई का उसे संग था। यह तो जिनेन्द्रकथित बात तो अन्यत्र कहीं है नहीं। आहा..हा..! भले अध्यात्म की बातें थीं।

वस्तु जहाँ अन्तर्मुख भगवान शक्ति का पिण्ड है। उस शक्ति का स्पर्श भी किया नहीं। वहाँ तो, तीन बोल हो गये। द्रव्यवस्तु, शक्तिवान। शक्तिवान एक, शक्ति अनन्त और अनन्त शक्ति के आश्रय से उत्पन्न होनेवाली पर्यायें भी अनन्त। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त, जिनेन्द्र के अतिरिक्त कहीं नहीं है। समझ में आया?

शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व... देखो, यह तत्त्व! श्रीमद् ने कहा है न? गुप्त चैतन्यचमत्कार सृष्टि के लक्ष्य में नहीं है, ऐसा शब्द है। गुप्त चैतन्यचमत्कार सृष्टि के लक्ष्य में नहीं है। भगवान आत्मा में अन्दर गुप्त चमत्कार पड़ा है। अन्दर शक्तिरूप निधान पड़ा है, वह गुप्त चमत्कार है। समझ में आया? राग का माहात्म्य, निमित्त का माहात्म्य, एक समय की वर्तमान अवस्था का माहात्म्य परन्तु गुप्त चमत्कार इसे कहते हैं। चैतन्यचमत्कार! अन्तर में चैतन्यचमत्कार स्वभावरूप भगवान में शीघ्र प्रवेश करते हैं, स्पर्श करते हैं, पर्याय में से निकलकर गहरे-गहरे ध्रुव में जाते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : शीघ्रता की प्रेरणा दी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शीघ्रता। पहले व्यवहार करना नहीं, ऐसा कहते हैं। पहले व्यवहार करो तो ऐसा होता ही नहीं। वस्तु के स्वभाव का भान होने में व्यवहार की अपेक्षा नहीं है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस ओर की दृष्टि छोड़ दे। रागादि विकल्प वह तो विकार है। विकार का लक्ष्य छोड़ दे। स्वभाव का लक्ष्य कर, चैतन्यचमत्कार में घुस जा। **गहरा उतर जाता है,...** देखो! गहरा उतर जाता है। गहरा.. गहरा.. गहरा.. पाताल की थाह लेने अन्दर जाता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! बात भी सुनी नहीं होगी। ऐई, पोपटभाई! आहा..हा..! सर्वज्ञ जिनेन्द्र परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग ऐसा है।

शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र.... प्रभु भगवान आत्मा। केवलज्ञान की पर्याय की बात है न! चैतन्यचमत्कारमात्र भगवान आत्मा ध्रुव। ध्रुवस्वभाव, ज्ञायकभाव, एकरूप भाव,

सदृशभाव, नित्यभाव, अचलभाव, अभेदभाव में गहरा उतर जा। अन्दर में जा। गहर उतर जा। तुझे केवलज्ञान प्राप्त होगा। **वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है (अर्थात्, मुक्तिसुन्दरी का पति होता है।)** उसे मुक्तिरूपीदशा प्रगट होती है। आहा..हा..! यह मार्ग है। जयपुर में आता है। ऐसी बातें लोगों को सुनना कठिन पड़े। झगड़ा, वाद-विवाद उत्पन्न हो। ऐई! पण्डितजी! तुम तो दो व्यक्ति जयपुर के हो, तुम क्यों बोलोगे? जयपुर की हाँ की है न? यह कोई सेठिया इनकार करे। यह पण्डितजी जयपुर के हैं। मैंने ऐसा कहा, जयपुर में। यह कैसे चले, कैसे माने, लोगों का विरोध करे।

मुमुक्षु : ....माननेवाले बहुत हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठिया अस्ति से बोलनेवाले हैं न? आहा..हा..! अरे भगवान! मार्ग तो प्रभु तेरा तीनों काल, तीन लोक में ऐसा है, हों! सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग। आहा..हा..! देखो न, एक शब्द रचा है न।

सपदि विशति यत्तच्चिच्चमत्कारमात्रं भगवान आत्मा अपना चिच्चमत्कार उसमें से अनन्त... अनन्त... अनन्त... केवलज्ञान पर्याय उत्पन्न हो, ऐसा चिच्चमत्कार भगवान अन्दर पड़ा है। उसे शीघ्र अविलम्ब-विलम्ब छोड़कर। भीखाभाई! पहले यह करूँ और पहले यह करूँ, बाद में यह, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। भारी गजब किया है। थोड़ा सुन तो लूँ, समझ तो लूँ, पहले समझ तो लूँ, इससे भी इनकार करते हैं। ऐई, रामजीभाई! आहा..हा..! **सपदि** में ऐसा आता है या नहीं? इसमें उग्र-एकदम। पहले यह कर लूँ, यह कर लूँ, यह करके फिर यह करूँगा, यह करके फिर यह करूँगा, ऐसा नहीं। आहा..हा..! ए.. कान्तिभाई! होते-होते होगा। पहले व्यवहार सुधारो फिर (होगा)। आहा..हा..! वीतरागमार्ग... सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागता बताते हैं। पर की अपेक्षा रखे, वह तो राग है। आहा..हा..! समझ में आया? वीतराग धर्म है, वीतराग धर्म अर्थात् निर्दोष धर्म। वीत अर्थात् नहीं। राग नहीं, द्वेष भी नहीं। कुछ नहीं। यह ऐसा माल है।

कहते हैं, भगवान तेरी दृष्टि पहले चिद्चमत्कार में जानी चाहिए। चारों ओर से दृष्टि हटाकर एक ध्रुव चैतन्य भगवान पर तेरी दृष्टि का ध्येय, झुकाव, सन्मुखता होनी चाहिए। आहा..हा..! समझ में आया? **वह पुरुष...** जो कोई आत्मा ऐसा करेगा, वह पुरुष मुक्तिसुन्दरी का पति होगा। मुक्ति की निर्मल पर्याय प्राप्त होगी, यह बात है, भाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हमें केवलज्ञान ऐसे हुआ है, इस विधि से हुआ है तो तुम्हें वाणी द्वारा कहते हैं, आगम में ऐसा कथन है। इससे विरुद्ध कथन हो, वह आगम नहीं है। आहा..हा..! भारी बात, भाई! कहीं व्यवहार से कहा है न, परन्तु वह व्यवहार से ज्ञान कराया है। व्यवहार से होता है, ऐसी चीज़ नहीं है। ओहो! जिसे एक आत्मा चैतन्यचमत्कार की जहाँ अपेक्षा है, दूसरी कोई अपेक्षा है नहीं। ऐसा मार्ग वीतराग का है। यह १० गाथा हुई।

मुमुक्षु : धन लुटाया जाता है, लेना हो तो ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : ११-१२ गाथा। १० गाथा हुई।

मुमुक्षु : निज की सम्पत्ति मिल गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तेरी सम्पत्ति तेरे पास परिपूर्ण है। कहीं जाना-आना है नहीं। आहा..हा..! अब ११-१२।

गाथा-११-१२

केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणं ति।
सण्णाणिदरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं।।११।।
सण्णाणं चउभेयं मदिसुदओही तहेव मणपज्जं।
अण्णाणं ति-वियप्पं मदियाई भेददो चेव।।१२।।

केवलमिन्द्रियरहितं असहायं तत्स्वभावज्ञानमिति।
सञ्ज्ञानेतरविकल्पे विभावज्ञानं भवेद् द्विविधिम्।।११।।
सञ्ज्ञानं चतुर्भेदं मतिश्रुतावधयस्तथैव मनःपर्ययम्।
अज्ञानं त्रि-विकल्पं मत्यादेर्भेदतश्चैव।।१२।।

अत्र च ज्ञानभेदलक्षणमुक्तम्। निरुपाधिस्वरूपत्वात् केवलं, निरावरणस्वरूपत्वात् क्रमकरणव्यवधानापोढं, अप्रतिवस्तुव्यापकत्वात् असहायं, तत्कार्यस्वभावज्ञानं भवति। कारणज्ञानमपि तादृशं भवति। कुतः, निजपरमात्मस्थितसहजदर्शनसहजचारित्रसहजसुख-सहजपरमचिच्छक्तिनिजकारणसमयसारस्वरूपाणि च युगपत् परिच्छेत्तुं तथाविधमेव।

इति शुद्धज्ञानस्वरूपमुक्तम्।

इदानीं शुद्धाशुद्धज्ञानस्वरूपभेदस्त्वयमुच्यते। अनेकविकल्पसनाथं मतिज्ञानं उपलब्धि-भावनोपयोगाच्च अवग्रहादिभेदाश्च बहुबहुविधादिभेदाद्वा। लब्धिभावनाभेदाच्छ्रुतज्ञानं द्विविधम्। देशसर्वपरमभेदादवधिज्ञानं त्रिविधम्। ऋजुविपुलमतिविकल्पान्मनःपर्ययज्ञानं च द्विविधम्। परमभावस्थितस्य सम्यग्दृष्टेरेतत्सञ्ज्ञानचतुष्कं भवति। मतिश्रुतावधिज्ञानानि मिथ्या-दृष्टिं परिप्राप्य कुमतिकुश्रुतविभङ्गज्ञानानीति नामान्तराणि प्रपेदिरे।

अत्र सहजज्ञानं शुद्धान्तस्तत्त्वपरमतत्त्वव्यापकत्वात् स्वरूपप्रत्यक्षम्। केवलज्ञानं सकल-प्रत्यक्षम्। 'रूपिष्ववधेः' इति वचनादवधिज्ञानं विकलप्रत्यक्षम्। तदनन्तभागवस्त्वन्शग्राहक-

त्वान्मनःपर्ययज्ञानं च विकलप्रत्यक्षम्। मतिश्रुतज्ञानद्वितयमपि परमार्थतः परोक्षं, व्यवहारतः प्रत्यक्षं च भवति।

किञ्च उक्तेषु ज्ञानेषु साक्षान्मोक्षमूलमेकं निजपरमतत्त्वनिष्ठसहजज्ञानमेव। अपि च पारिणामिकभावस्वभावेन भव्यस्य परमस्वभावत्वात् सहजज्ञानादपरमुपादेयं न समस्ति।

अनेन सहजचिद्विलासरूपेण सदा सहजपरमवीतरागशर्मामृतेन अप्रतिहतनिरावरणपरम-चिच्छक्तिरूपेण सदान्तर्मुखे स्वस्वरूपाविचलस्थितिरूपसहजपरमचारित्रेण त्रिकालेष्व-व्युच्छिन्नतया सदा सन्निहितपरमचिद्रूपश्रद्धानेन अनेन स्वभावानन्तचतुष्टयेन सनाथं अनाथ-मुक्तिसुन्दरीनाथं आत्मानं भावयेत्।

इत्यनेनोपन्यासेन सन्सारव्रततिमूललवित्रेण ब्रह्मोपदेशः कृत इति।

इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल वह स्वाभाविक ज्ञान है।
दो विधि विभाविक-ज्ञान सम्यक् और मिथ्याज्ञान है॥११॥
मति, श्रुत, अवधि, अरु मनःपर्यय चार सम्यग्ज्ञान हैं।
अरु कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन भेद मिथ्याज्ञान हैं॥१२॥

अन्वयार्थ :—[केवलम्] जो (ज्ञान) केवल, [इन्द्रियरहितम्] इन्द्रियरहित और [असहायं] असहाय है, [तत्] वह [स्वभावज्ञानम् इति] स्वभावज्ञान है; [संज्ञानेतरविकल्पे] सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञानरूप भेद किये जाने पर, [विभावज्ञानं] विभावज्ञान [द्विविधं भवेत्] दो प्रकार का है।

[संज्ञानं] सम्यग्ज्ञान, [चतुर्भेदं] चार भेदवाला है - [मतिश्रुतावधयः तथा एव मनःपर्य्ययम्] मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्यय; [अज्ञानं च एव] और अज्ञान, (-मिथ्याज्ञान) [मत्यादेः भेदतः] मति आदि के भेद से [त्रिविकल्पम्] तीन भेदवाला है।

टीका :—यहाँ (इन गाथाओं में) ज्ञान के भेद कहे हैं।

जो उपाधिरहित स्वरूपवाला होने से केवल* है; आवरणरहित स्वरूपवाला होने से क्रम, इन्द्रिय और (देश-कालादि) व्यवधान[१] रहित है; एक-एक वस्तु में व्याप्त नहीं होता (समस्त वस्तुओं में व्याप्त होता है), इसलिए असहाय है, वह कार्यस्वभावज्ञान है। कारणज्ञान भी वैसा ही है। काहे से ? निजपरमात्मा में विद्यमान

---

* केवल=अकेला, शुद्ध, मिलावटरहित (निर्भेल) १. व्यवधान=आड़, परदा, अन्तर, आँतर-दूरी, विघ्न।

सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजसुख और सहजपरमचित्शक्तिरूप निजकारणसमयसार के स्वरूपों को युगपद् जानने में समर्थ होने से वैसा ही है। इस प्रकार शुद्धज्ञान का स्वरूप कहा।

अब, यह (निम्नानुसार) शुद्धाशुद्धज्ञान का स्वरूप और भेद कहे जाते हैं — उपलब्धि[१], भावना और उपयोग से तथा अवग्रहादि[२] भेद से अथवा बहु[३], बहुविध आदि भेद से मतिज्ञान अनेक भेदवाला है। लब्धि और भावना के भेद से श्रुतज्ञान दो प्रकार का है। देश, सर्व और परम के भेद से (अर्थात्, देशावधि, सर्वावधि तथा परमावधि — ऐसे तीन भेदों के कारण) अवधिज्ञान तीन प्रकार का है। ऋजुमति और विपुलमति के भेद के कारण मनःपर्ययज्ञान दो प्रकार का है। परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को ये[४] चार सम्यग्ज्ञान होते हैं। मिथ्यादर्शन हो, वहाँ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान 'कुमति ज्ञान', 'कुश्रुतज्ञान' तथा 'विभंगज्ञान' — ऐसे नामान्तरों को (अन्य नामों को) प्राप्त होते हैं।

यहाँ (ऊपर कहे हुए ज्ञानों में) सहजज्ञान, शुद्ध अन्तःतत्त्व परमतत्त्व में व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष[५] है। केवलज्ञान, सकलप्रत्यक्ष (सम्पूर्ण प्रत्यक्ष) है। ''रुपिष्ववधेः (अवधि-ज्ञान का विषय-सम्बन्ध रूपी द्रव्यों में है)'' ऐसा (आगम का) वचन होने से अवधिज्ञान, विकलप्रत्यक्ष (एकदेशप्रत्यक्ष) है। उसके अनन्तवें भाग में वस्तु के अंश का ग्राहक (ज्ञाता) होने से मनःपर्ययज्ञान भी विकलप्रत्यक्ष है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, दोनों परमार्थ से परोक्ष हैं और व्यवहार से प्रत्यक्ष हैं।

---

१. मतिज्ञान तीन प्रकार का है, उपलब्धि, भावना, और उपयोग। मतिज्ञानावरण क्षयोपशम जिसमें निमित्त है - ऐसी अर्थग्रहणशक्ति (पदार्थ को जानने की शक्ति), सो उपलब्धि है; जाने हुए पदार्थ के प्रति पुनः पुनः चिन्तन, सो भावना है; 'यह काला है' 'यह पीला है' इत्यादिरूप अर्थग्रहणव्यापार (पदार्थ को जानने का व्यापार) सो उपयोग है।

२. मतिज्ञान चार भेदवाला है : अवग्रह, ईहा (विचारणा), अवाय (निर्णय) और धारणा। (विशेष के लिए ''मोक्षशास्त्र (सटीक)'' देखें।)

३. मतिज्ञान बारह भेदवाला है : बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनिःसृत, निःसृत, अनुक्त, उक्त, ध्रुव तथा अध्रुव। (विशेष के लिए ''मोक्षशास्त्र (सटीक)'' देखें।)

४. सुमतिज्ञान और सुश्रुतज्ञान, सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों को होते हैं। सुअवधिज्ञान किन्हीं-किन्हीं सम्यग्दृष्टि जीवों को होता है। मनःपर्ययज्ञान किन्हीं-किन्हीं मुनिवरों को-विशिष्टसंयमधरों को होता है।

५. स्वरूपप्रत्यक्ष=स्वरूप से प्रत्यक्ष; स्वरूप-अपेक्षा से प्रत्यक्ष; स्वभाव से प्रत्यक्ष।

और विशेष बात यह है कि उक्त (ऊपर कहे हुए) ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष का मूल, निजपरमतत्त्व में स्थित ऐसा एक सहजज्ञान ही है तथा सहजज्ञान, (उसके) पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण, भव्य का परमस्वभाव होने से, सहजज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ उपादेय नहीं है।

इस सहजचिद्विलासरूप (१) सदा सहज परमवीतराग सुखामृत, (२) अप्रतिहत निरावरण परमचित्शक्ति का रूप, (३) सदा अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज परमचारित्र, और (४) त्रिकाल अविच्छिन्न (अटूट) होने से सदा निकट, ऐसी परम चैतन्यरूप की श्रद्धा — इस स्वभाव-अनन्त चतुष्टय से जो सनाथ (सहित) है — ऐसे आत्मा को, अनाथ मुक्तिसुन्दरी के नाथ को भाना चाहिए (अर्थात्, सहजज्ञान-विलासरूप से स्वभाव अनन्त चतुष्टययुक्त आत्मा को भाना चाहिए-अनुभवन करना चाहिए)।

इस प्रकार संसाररूपी लता का मूल छेदने के लिए हँसियारूप इस उपन्यास[१] से ब्रह्मोपदेश किया।

गाथा-११-१२ पर प्रवचन

केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणं ति।
सण्णाणिदरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं।।११।।

सण्णाणं चउभेयं मदिसुदओही तहेव मणपज्जं।
अण्णाणं ति-वियप्पं मदियाई भेददो चेव।।१२।।

नीचे हरिगीत।

इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल वह स्वाभाविक ज्ञान है।
दो विधि विभाविक-ज्ञान सम्यक् और मिथ्याज्ञान है॥११॥

मति, श्रुत, अवधि, अरु मनःपर्यय चार सम्यग्ज्ञान हैं।
अरु कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन भेद मिथ्याज्ञान हैं॥१२॥

१. उपन्यास=कथन, सूचन, लेख, प्रारम्भिक कथन, प्रस्तावना।

(इन गाथाओं में) ज्ञान के भेद कहे हैं। नीचे टीका है न?

टीका- जो उपाधिरहित स्वरूपवाला होने से केवल है;... केवलज्ञान। यह त्रिकाल की बात नहीं है। केवलज्ञान, सकल विमल पर्याय जो प्रगट हुई। उपाधिरहित है- उसे उपाधि नहीं है, इसलिए स्वभावज्ञान कहा। **स्वरूपवाला होने से केवल है; आवरणरहित स्वरूपवाला...** अकेला, शुद्ध, निर्मेल (मिलावटरहित) **आवरणरहित स्वरूपवाला होने से क्रम,...** रहित है। केवलज्ञान में क्रम नहीं है। एक के बाद एक जानना, ऐसा नहीं है। **इन्द्रिय...** की सहायता नहीं है। **और (देश-कालादि) व्यवधान रहित है;...** आड़ नहीं, पर्दा नहीं, अन्तर नहीं, दूरी नहीं, दूरी नहीं, विघ्न नहीं। केवलज्ञान में कोई अन्तर पर्दा नहीं पड़ता। आहा..हा..! ऐसा होता है। देखो, क्रम नहीं, इन्द्रियों की सहायता नहीं, इसलिए इन्द्रियरहित है। **(देश-कालादि) व्यवधान रहित है;...** इतने क्षेत्र को जानना और इतने क्षेत्र को न जानना, ऐसा कुछ उसमें नहीं है। तीन काल-तीन लोक, अनन्त लोकालोक ज्ञान की पर्याय में-केवलज्ञान में ज्ञात होते हैं। आहा..हा..!

एक-एक वस्तु में व्याप्त नहीं होता, इसलिए असहाय है,... पहले एक वस्तु को जाने, फिर दूसरी वस्तु को जाने, ऐसा नहीं है। केवलज्ञान में एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानता है। कहो, समझ में आया? **(समस्त वस्तुओं में व्याप्त होता है), इसलिए असहाय है,...** केवलज्ञान में कोई चीज़ बाकी नहीं है। तीन काल-तीन लोक की पर्याय जहाँ होती है, जहाँ-तहाँ निमित्त कैसा है, वह सब एक समय में ज्ञात होता है।

मुमुक्षु : निमित्त की बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, निमित्त होता है, वह जाना। जिस समय में जो पर्याय होती है, उसे जाना। उस समय निमित्त कौन था, वह जाना। भगवान के ज्ञान में सब आ गया है; कुछ बाकी नहीं है। आहा..हा..! णमो अरिहंताणं करे परन्तु केवलज्ञान किसे कहते हैं, इसकी खबर नहीं।

वह कार्यस्वभावज्ञान है। देखो, इसका नाम कार्यस्वभावज्ञान है। केवलज्ञान है न?

कारणज्ञान भी वैसा ही है। देखो! अब अन्दर ज्ञानस्वभाव त्रिकाल, वह भी वैसा ही है। **काहे से ? निजपरमात्मा में विद्यमान सहजदर्शन,...** क्या कहते हैं? देखो अब।

अन्तर में ज्ञानस्वभाव-गुण जो ध्रुव पड़ा है। वह अन्तर में विद्यमान सहजदर्शन, यह त्रिकाली दर्शन, त्रिकाली चारित्र, अन्दर त्रिकाली वीतरागता, सहज आनन्द, त्रिकाली आनन्द। सहज शब्द पड़ा हुआ है न? पर्यायरहित बताना है। स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक चारित्र, स्वाभाविक आनन्द और स्वाभाविक परमचित्शक्तिरूप वीर्य। **परमचित्शक्तिरूप निजकारणसमयसार के...** अपने निजकारणसमयसार के **स्वरूपों को युगपद् जानने में समर्थ...** अन्तर का ज्ञान, अपना गुण सबको जानने को समर्थ है। ज्ञानस्वभाव अपनी अनन्त शक्तियाँ हैं, उन प्रत्येक को जानने में समर्थ है। चार (गुण) तो मुख्य लिये। **सहजपरमचित्शक्तिरूप...** यहाँ ज्ञान लिया। उसे जानता है, ज्ञान अपनी चित्शक्ति को, सुख को, चारित्र और दर्शन को जानता है। वह **निजकारणसमयसार के...** देखो निजकारणसमयसार। ध्रुवस्वभाव, वह निजकारणसमयसार। आहा..हा..!

टीका देखो न नियमसार की! भागवत्शास्त्र है। यह जैन का भागवत्शास्त्र है। आहा..हा..! वह भागवत्शास्त्र कहते हैं न? आगे कहेंगे। भागवत्शास्त्र है। भगवान का कहा हुआ, भगवान होने की शक्तिवाला, बतानेवाला यह भागवत्शास्त्र है।

इस प्रकार शुद्धज्ञान का स्वरूप कहा। देखो! शुद्धज्ञान का कार्य और कारण दोनों की व्याख्या की। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)